UNIVERSAL LIBRARY
OU_176163
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H294.598 V85M Accession No. H1072

Author विवेकानन्द, स्वामी.

Title मेरी समरनीति. 1948.

This book should be returned on or before the date last marked below.

मेरी समर-नीति

स्वामी विवेकानन्द

अनुवादक—पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

श्रीरामकृष्ण आश्रम
नागपुर, सी. पी.

मई, १९४८] [मूल्य ।≡

प्रकाशक—
स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, सी. पी.

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला

पुष्प इकतीसवाँ

(सर्वाधिकार स्वरक्षित)

मुद्रक—
ल. म. पटले,
रामेश्वर प्रिंटिंग प्रेस, सिताबर्डी, नागपुर.

वक्तव्य

स्वामी विवेकानन्दजी ने भारतवर्ष में जो स्फूर्तिप्रद विचारोद्बोधक व्याख्यान दिये थे वे काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। यह उन्हीं व्याख्यानों में से एक है। भावी सन्तान की मनोभूमि को संस्कारी बनाने के लिए स्वामीजी के रचनात्मक विचारों का समावेश इस व्याख्यान में पूर्णरूप से पाया जाता है। आधुनिक वातावरण में जब कि भारत ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता पुनः प्राप्त कर ली है, यह पुस्तक भारतीयों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

हम पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को, स्वामीजी के इस व्याख्यान को शुद्ध, सरल और मनोरम हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने के उपलक्ष्य में हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी भाषा-भाषी इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करेंगे।

नागपुर,
ता. १५-५-१९४८

प्रकाशक

स्वामी विवेकानन्द

मेरी समर-नीति

(मद्रास के विक्टोरिया हॉल में दिया हुआ भाषण ।)

उस दिन अधिक भीड़ के कारण मैं व्याख्यान समाप्त नहीं कर सका था। अस्तु, मद्रासनिवासियों ने मेरे प्रति जो सदय व्यवहार किया है उसके लिए आज उन्हें मैं धन्यवाद देता हूँ । मैं नहीं जानता कि अभिनन्दन-पत्रों में मेरे लिए जो सुन्दर सुन्दर विशेषण प्रयुक्त हुए है उनके लिए मैं किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकाश करूँ। अतः मैं उस प्रभु की ही प्रार्थना करता हूँ जिससे वह मुझे इन प्रशंसाओं के योग्य बना दे और इस योग्य भी बना दे कि मैं अपना सारा जीवन अपने धर्म और मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर सकूँ ।

मेरा 'सन्देश' वहन ।

मैं समझता हूँ कि मुझमें अनेक दोषों के होते हुए भी थोड़ा साहस है। मैं भारतवर्ष से पाश्चात्य देशों में कुछ सन्देश ले गया था और उसे मैंने निर्भीकता से अमेरिका और इङ्गलैण्ड वासियों के सामने प्रकट किया। आज का विषय आरम्भ करने के पहले मैं साहस पूर्वक कुछ शब्द आप लोगों के सम्मुख भी निवेदन कर देना चाहता हूँ। मेरे चारों ओर कुछ ऐसी अवस्थायें उपस्थित होती रही हैं, जो मेरे कार्य की उन्नति में बाधायें उपस्थित करती हुई यदि सम्भव हो सके तो मुझे एकबारगी कुचल कर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर देना चाहती हैं। ऐसी चेष्टायें सदा ही

असफल होती हैं, अतः वे भी सफल न हो सकीं। गत तीन वर्षों में मेरे और मेरे कार्यों के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने अनेक भ्रमात्मक बातें कही हैं; जब तक मैं विदेश में था, मैं चुप रहा; मैंने एक शब्द भी उस सम्बन्ध में नहीं कहा। पर आज जब मैं अपनी मातृभूमि में खड़ा हूँ, मैं उन भ्रामक बातों को स्पष्ट करने के लिए कुछ निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ। इन शब्दों का क्या फल होगा अथवा ये शब्द आप लोगों के हृदय में किन किन बातों का उद्रेक करेंगे, इसकी मैं कुछ परवा नहीं करता। कारण कि मैं वही संन्यासी हूँ जिसने लगभग चार वर्ष पहले अपने दण्ड और कमण्डल के साथ संन्यासी के वेष में इस नगर में प्रवेश किया था और वही सारी दुनिया इस समय भी मेरे सामने है।

अब और भूमिका की आवश्यकता नहीं है, मैं अपने विषय को आरम्भ करता हूँ। सबसे पहले मुझे थियासोफिकल सोसायटी के सम्बन्ध में कुछ कहना है। अवश्य ही उक्त सोसायटी से भारत का कुछ भला हुआ है। अतः प्रत्येक हिन्दू उक्त सोसायटी और खासकर श्रीमती बेसेंट का कृतज्ञ है। यद्यपि मैं श्रीमती बेसेंट के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानता हूँ पर जो कुछ भी मैं उनके बारे में जानता हूँ उसके आधार पर मेरी यह धारणा है कि वे हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक हैं और यथा-साध्य उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही हैं; इसलिए वे प्रत्येक सच्चे भारत-सन्तान की अत्यन्त कृतज्ञता की अधिकारिणी हैं एवं उन पर तथा उनसे सम्बन्ध रखने वालों पर ईश्वर के आशीर्वाद की वर्षा हो।

थियासोफिकल सोसायटी।

परन्तु यह एक बात है और थियासोफिकल सोसायटी में योगदान देना दूसरी बात। भक्ति, श्रद्धा और प्रेम एक बात है और कोई मनुष्य जो कुछ कहे उसे बिना विचारे, उस पर तर्क बिना किये और बिना उसका विश्लेषण किये उसे निगल लेना सर्वथा दूसरी बात है। एक बात चारों ओर फैल रही है कि अमेरिका और इङ्गलैण्ड में जो कुछ काम मैंने किया है उसमें थियासोफिष्टों ने मेरी सहायता की है। मैं आप लोगों से स्पष्ट शब्दों में कहता हूँ कि इस बात का प्रत्येक शब्द झूठ है। मैं इस जगत में उदार भाव एवं भिन्न मत वालों के लिए महानुभूति की बड़ी लम्बी लम्बी बातें सुनता हूँ। बात तो बहुत ठीक है पर कार्यतः मैं देखता हूँ कि जब तक कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सब बातों में विश्वास करता है उस समय तक वह पहले के साथ सहानुभूति रखता है; पर ज्योंही वह किसी विषय में उससे भिन्न विचार रखने का साहस करता है, त्योंही वह सहानुभूति चल देती है और प्रेम गायब हो जाता है।

और कुछ व्यक्ति हैं जिनका खुद एक स्वार्थ है। यदि किसी देश में इस प्रकार का कोई काम हो, जिससे उनके स्वार्थ में कुछ व्याघात होता हो, तो उनके हृदय में इतनी ईर्ष्या और घृणा उत्पन्न हो उठती है कि वे उस समय क्या कर डालेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता।

ब्राह्म समाज और मिशनरी।

यदि हिन्दू अपना घर स्वयं साफ करने की चेष्टा करते हैं तो इसमें ईसाई पादरियों की क्या हानि है? यदि हिन्दू प्राणपण से अपना संस्कार करने की चेष्टा करते हैं तो इसमें ब्राह्म-समाज और अन्यान्य संस्कारक समाजों की क्या हानि होगी? फिर ये लोग हिन्दुओं के संस्कार के विरोध में क्यों

खड़े होते हैं ? ये लोग इस आन्दोलन के प्रबलतम शत्रु क्यों हो रहे हैं ? क्यों यह सब हो रहा है, मैं यही प्रश्न करता हूँ । मैं समझता हूँ कि उनकी घृणा और ईर्ष्या का परिमाण इतना अधिक है कि इस विषय में उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करना सर्वथा निरर्थक है।

अब मैं पहले थियासोफिष्टों के बारे में कहूँगा । आज से चार वर्ष पहले मैं अकेला, दरिद्र और अपरिचित संन्यासी के रूप में, जिसका कोई बन्धु-बान्धव नहीं था, सात समुद्र पार अमेरिका जा रहा था, जहाँ मेरा किसी एक आदमी से भी परिचय न था; उस समय मैं उक्त सोसायटी के नेता के पास गया । स्वभावतः मैंने विचारा कि यह अमेरिकावासी और भारत-भक्त हैं, इसलिए सम्भवतः अमेरिकावासी किसी सज्जन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र देने की प्रार्थना की तो उन्होंने पूछा कि "क्या तुम मेरी सोसायटी के सदस्य बनोगे? " मैंने जवाब दिया कि " मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ, क्योंकि, मैं आपसे कई धार्मिक विषयों में मतभेद रखता हूँ। " उन्होंने कहा, " तब जाइये, मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।" यदि मेरे कोई थियासोफिष्ट मित्र यहाँ मौजूद हों तो उनसे मैं पूछता हूँ कि क्या यही मेरा रास्ता बनाना था ? जैसा आपको ज्ञात ही है, मैं अपने कतिपय मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका पहुँच गया। उन मित्रों में से अनेक तो यहाँ पर उपस्थित ही हैं, केवल न्यायमूर्ति सुब्रह्मण्य अय्यर ही अनुपस्थित हैं, मैं उक्त सज्जन के प्रति इस स्थान

थियासोफिकल सोसायटी।

पर अपनी अत्यन्त कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ। उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से एक वह भी हैं, वही भारतमाता के सच्चे सपूत हैं। इस भाँति धार्मिक महासभा के कई मास पूर्व मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये भी बहुत कम थे जो शीघ्र ही समाप्त हो गये। अब जाड़ा आया और मेरे पास सिर्फ गरमी के महीन कपड़े थे। उस घोरतर शीतप्रधान देश में मैं क्या करूँ यह मेरी समझ में न आ सका। यदि मैं मार्ग में भीख माँगने लगता तो इसका परिणाम यह होता कि मैं जेल में भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास सिर्फ कुछ ही डालर बचे थे, मैंने अपने कई मद्रासवासी मित्रों के पास तार भेजे। यह बात थियासोफिष्टों को मालूम हो गई और उनमें से एक ने लिखा कि "शैतान शीघ्र ही मर जायगा; ईश्वर की इच्छा से अच्छा ही हुआ।" क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं इन बातों को इस समय कहना नहीं चाहता था किन्तु हमारे स्वदेशवासी इनको जानने के इच्छुक थे, अतः ये कही गई हैं। मैंने पिछले तीन वर्षों में इन बातों के सम्बन्ध में एक शब्द भी अपने मुँह से नहीं कहा; चुपचाप रहना ही मेरा मूलमंत्र था, किन्तु आज ये बातें मुँह से निकल पड़ीं। इतना ही बस नहीं है। मैंने धार्मिक महासभा में कितने ही थियासोफिष्टों को देखा, मैं उनसे बात करने और मिलने की चेष्टा करता रहा। मेरी नजरों पर उनके अवज्ञायुक्त चेहरे आज भी नाच रहे हैं। मानों वे कहते थे कि "एक क्षुद्र कीड़े को देवताओं के बीच में आने का क्या प्रयोजन?" क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? धार्मिक महासभा में मेरा नाम और यश हो जाने पर मेरे लिए भयानक कार्यों का सूत्रपात हुआ। पर प्रत्येक स्थान पर

इन लोगों ने मुझे दबाने की चेष्टा की। थियासोफिकल सोसायटी के सदस्यों को मेरे व्याख्यान सुनने की मनाही कर दी गई, क्योंकि यदि वे मेरी वक्तृता सुनेंगे तो सोसायटी पर से उनकी सारी निष्ठा जाती रहेगी। इस सोसायटी के गुप्त विभाग (Esoteric) का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है उसे कुथमी और मोरिया अथवा उनके प्रत्यक्ष प्रतिनिधि मिस्टर जज और श्रीमती बेसन्ट से ही शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। अतः उक्त विभाग के सदस्य होने का यह अर्थ है कि मनुष्य अपनी स्वाधीन चिन्ता बिलकुल छोड़कर पूर्ण रूप से इन लोगों के हाथ में आत्मसमर्पण कर दे। निश्चय ही मैं ये सब बातें नहीं कर सकता था और जो मनुष्य ऐसा करे उसे मैं हिन्दू कह भी नहीं सकता। मेरे हृदय में मिस्टर जज के लिए बड़ी श्रद्धा है। वह गुणवान, उदार, सरल और थियासोफिष्टों के योग्यतम प्रतिनिधि थे। उनमें और श्रीमती बेसेन्ट में जो विरोध हुआ था उसके सम्बन्ध में कुछ भी राय देने का मुझे अधिकार नहीं है, क्योंकि दोनों ही अपने 'महात्मा' को सत्य कहने का दावा करते हैं। आश्चर्य का विषय तो यह है कि दोनों ही एक ही 'महात्मा' का दावा करते हैं; ईश्वर जाने सत्य कौन है। वही विचार करने वाला है। और जब दोनों पक्ष में प्रमाण की मात्रा बराबर है तब ऐसी अवस्था में किसी भी पक्ष में अपनी राय प्रकट करने का किसी को अधिकार नहीं है।

इस प्रकार समस्त अमेरिका में उन लोगों ने मेरे लिए मार्ग बनाया! इतना ही नहीं, वे दूसरे विरोधी पक्ष—ईसाई मिशनरियों—से जा मिले। इन ईसाई मिशनरियों ने ऐसे ऐसे भयानक झूठ मेरे विरुद्ध

गढ़े, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यद्यपि मैं अकेला और मित्रहीन था तथापि इन्होंने प्रत्येक स्थान में मेरे चरित्र पर दोषारोपण किया। उन्होंने मुझे प्रत्येक मकान से निकालने और जो मेरा मित्र बनता उसे मेरा शत्रु बनाने की चेष्टा की। उन्होंने मुझे भूखे मार डालने का प्रयत्न किया। मुझे यह कहते दुःख होता है कि इस काम में मेरे एक भारतवासी बन्धु का भी हाथ था। वह भारतवर्ष में संस्कारक दल के नेता हैं। यह सज्जन प्रति दिन घोषित करते हैं कि ईसु भारतवर्ष में आयेंगे। क्या इसी प्रकार से ईसु भारतवर्ष में आयेंगे? क्या इसी प्रकार से भारतवर्ष का संस्कार होगा? इन सज्जन को मैं अपने बचपन से ही जानता था, ये मेरे परम मित्र भी थे। जब मैं उनसे मिला तो मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ क्योंकि मैंने बहुत दिनों से किसी भारतवासी को नहीं देखा था। पर उन्होंने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया! जिस दिन धर्मसभा ने मुझे सम्मानित किया, जिस दिन शिकागो में मैं लोकप्रिय हुआ, उसी दिन से उनका स्वर बदल गया और मुझे नुकसान पहुँचाने के लिए छिपे छिपे जो कुछ वे कर सकते थे, उन्होंने करने में कुछ उठा नहीं रखा। मैं पूछता हूँ, क्या इसी तरह ईसु भारतवर्ष में आयेंगे? क्या बीस वर्ष ईसु की उपासना कर उन्होंने यही शिक्षा पाई है? हमारे ये बड़े बड़े संस्कारक कहते हैं कि ईसाई धर्म और ईसाई भारतवासियों को उन्नत बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या वह इसी प्रकार होगा? अवश्य ही यदि उक्त सज्जन का उदाहरण लिया जाय तो स्थिति आशाजनक नहीं प्रतीत होती।

अमेरिका में मेरे विरोधी दल के साथ अपने एक स्वदेशवासी का मिलन।

एक बात और; मैंने समाज संस्कारकों के मुख्य पत्र में पढ़ा था कि मैं शूद्र हूँ और मुझसे पूछा गया था कि एक शूद्र को संन्यासी होने का क्या अधिकार है! मैं यहाँ पर उसका जवाब देता हूँ। मैं उस महापुरुष का वंशधर हूँ जिसके चरणकमलों पर प्रत्येक ब्राह्मण पुष्पाञ्जलि चढ़ा कर यह उच्चारण करता है "यमाय धर्मराजाय चित्रगुप्ताय वै नमः।" । इसीके वंशज सबसे शुद्ध क्षत्रिय हैं। यदि अपने पुराणों पर विश्वास हो तो इन समाजसंस्कारकों को जान लेना चाहिये कि मेरी जाति ने और दूसरी सेवाओं के अतिरिक्त, पहले जमाने में कई शताब्दी तक आधे भारतवर्ष का शासन किया था। यदि मेरी जाति की गणना छोड़ दी जाय तो भारत की वर्तमान सभ्यता का क्या शेष रहेगा? केवल बंगाल में ही मेरी जाति में सबसे बड़े दार्शनिक, सबसे बड़े कवि, सबसे बड़े इतिहासज्ञे, सबसे बड़े पुरातत्ववेत्ता और सबसे बड़े धर्मप्रचारक उत्पन्न हुए हैं। मेरी ही जाति ने वर्तमान समय के सबसे बड़े वैज्ञानिकों से भारतवर्ष को विभूषित किया है। इन निन्दकों को थोड़ा अपने देश के इतिहास का तो ज्ञान प्राप्त करना था और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णों का भी अध्ययन करना था तब वे जान जाते कि तीनों ही वर्णों को संन्यासी होने और वेद का अध्ययन करने का समान अधिकार है। ये बातें मैंने केवल प्रसङ्गवश कही हैं। मैंने पूर्वोक्त श्लोकों को केवल उध्दृत किया है पर जब वे मुझे शूद्र कहते हैं तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं होता। हमारे पूर्व पुरुषों ने गरीब आदमियों पर जो अत्याचार किया था इससे उसका कुछ परिशोध हो जायगा। यदि मैं अत्यन्त नीच चाण्डाल होता तो

शूद्र और संन्यास।

मुझे और भी आनन्द आता, क्योंकि मैं उस महापुरुष का शिष्य हूँ जिसने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुये भी एक चाण्डाल के घर को साफ करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी। अवश्य ही वह चाण्डाल उनसे ऐसा नहीं करा सकता था। वह एक ब्राह्मण संन्यासी से अपना घर कैसे साफ कराता? अस्तु, एक दिन आधी रात को उठ कर गुप्त रूप से उन्होंने उस चाण्डाल के घर में प्रवेश किया और उसका पैखाना साफ कर दिया और अपने लम्बे लम्बे बालों से उस स्थान को पोंछा। और यह काम वे बराबर कई दिनों तक करते रहे जिसमें वे अपने को सबका दास बना सकें। मैंने उस महापुरुष के श्रीचरण-कमलों को अपने मस्तक पर धारण किया है। वही मेरे आदर्श हैं, उन्हीं आदर्श पुरुष का मैं अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है, उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिये।

ब्राह्मण संन्यासी और चाण्डाल।

तीस वर्ष की पाश्चिमी सभ्यता मेरे मन में उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। इसका कारण केवल यही है कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। विशुद्ध और कट्टर हिन्दू धर्म स्वतः किस रूप से अपने घर में काम करेगा, इसका उदाहरण दूसरा दृष्टान्त है। इन हमारे समाजसंस्कारकों में से कोई चाण्डाल की भी सेवा के लिए

सच्चा हिन्दू तथा संस्कारक।

तत्पर रहने वाला जीवन बिता कर दिखाये तब हम उसके चरणों की सेवा कर उससे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। बड़ी बड़ी लम्बी बातों के बनिस्बत कुछ कर दिखाना अधिक अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाजसंस्कारक समितियों के बारे में कुछ कहता हूँ। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के समाजसंस्कारकों में बड़ा अन्तर है, मैं इस सम्मति से सहमत भी हूँ। आप लोगों में से बहुतों को याद होगा, जो मैंने अक्सर आप लोगों से कहा है कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है, यहाँ पर विकास ही है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में में कहीं कहीं कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों जातियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाजसंस्कारक जो कुछ कहते हैं उससे मैं सर्वथा सहमत हूँ, परन्तु एक विभिन्नता और है जिसे वे नहीं समझते इन संस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं, परन्तु ऐसा कर लेना उनके लिए आश्चर्यजनक बात है। जिस मनुष्य ने अपने जीवन के चौदह वर्षों में फ़ाकाकशी का मुकाबिला किया हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन भोजन और सोने का स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नहीं जा सकता।

मद्रास का संस्कार-समिति-समूह।

जो मनुष्य बिना कपड़े और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा उस स्थान पर रहा हो जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस डिग्री कम हो, वह भारतवर्ष में इतनी सरलता से नहीं डराया जा सकता। यह पहली बात है, जो मैं उनसे कहूँगा, मुझमें एक अपनी दृढ़ता है, मेरा थोड़ा निज का अनुभव भी है, मुझे संसार को कुछ सन्देश भी देना है जिसे मैं बिना किसी डर और भविष्य की चिन्ता के घोषित करूँगा।

मेरी संस्कार-प्रणाली-विनाश नहीं, संगठन।

समाजसंस्कारकों से मैं कहूँगा कि मैं स्वयं उनसे कहीं बढ़कर समाजसंस्कारक हूँ। वे छोटे टुकड़ों का सुधार करना चाहते हैं और मैं जड़-पत्ते सभी का सुधार करना चाहता हूँ। हम लोगों का मतभेद केवल कार्य-प्रणाली में है। उनकी प्रणाली विनाशात्मक है और मेरी संगठनात्मक। मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश "तुम्हें इस भाँति चलना होगा, दूसरे प्रकार नहीं"—मढ़ने का साहस नहीं कर सकता। मैं तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ जो श्रीरामचन्द्रजी के पुल बनाने के समय थोड़ा बालू देकर अपना भाग पूरा कर सन्तुष्ट हो गई थी। यही मेरा भी भाव है। यह अद्भुत जातीय यंत्र बहुत दिनों से कार्य कर रहा है, यह जातीय जीवन का अद्भुत प्रवाह हम लोगों के सम्मुख बह रहा है। कौन जानता है और कौन साहस पूर्वक कह सकता है कि यह भला है या बुरा और यह किस प्रकार चलेगा। हजारों घटनाचक्र

उसके चारों ओर उपस्थित होकर उसे एक खास प्रकार की स्फूर्ति देकर कभी उसकी गति को मन्द और कभी उसे तीव्र कर देते हैं। उसके वेग को नियमित करने का कौन साहस कर सकता है। हमारा काम तो फल की ओर दृष्टि न कर केवल काम करते रहना है, जैसा कि गीता में भी कहा है। जातीय जीवन को जिस ईंधन की जरूरत है उसे देते जाओ, वह अपने ढंग से उन्नति करता जायगा, कोई उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सकता।

प्राच्य और पाश्चात्य दोनों ही समाज में दोष-गुण विद्यमान हैं।

हमारे समाज में बहुत सी बुराइयाँ हैं पर ऐसी बुराइयाँ प्रत्येक समाज में हैं। यहाँ की भूमि विधवाओं के आँसू से कभी कभी तर होती है और पाश्चात्य देश का वायुमण्डल अविवाहितों की आहों से भरा रहता है। यहाँ का जीवन दरिद्रता के दुःख से दुःखित है और वहाँ पर विलासिता के विष से लोग जीवन्मृत हो रहे हैं। यहाँ पर लोग इसलिए आत्महत्या करना चाहते हैं कि उनके पास कुछ खाने को नहीं है और वहाँ खाद्य की अधिकता के कारण लोग आत्महत्या करते हैं। बुराइयाँ सभी जगह हैं। ये पुराने वात रोग की भाँति हैं। यदि इसे पैर से हटाओ तो वह सिर पर चला जाता है। वहाँ से हटाने पर वह दूसरी जगह भाग जाता है। वह केवल एक जगह से दूसरी जगह भगाया ही जा सकता है। ऐ बालको, रोग की जड़ ही साफ कर देना ठीक उपाय है। हमारे दर्शनशास्त्रों में लिखा है कि अच्छे और बुरे का नित्य सम्बन्ध है। वे एक ही चीज़ के दो पहलू हैं। यदि तुम्हारे पास एक है तो दूसरा अवश्य रहेगा। जब समुद्र में एक स्थान पर लहर उठती है

शुभाशुभ नित्य संयुक्त हैं।

तो दूसरे स्थान पर गढ़ा होना अनिवार्य है। नहीं, जीवन ही दुःखमय है। एक सांस भी बिना किसी को मारे नहीं ली जा सकती। बिना किसी का भोजन छीने हम एक कौर भी स्वयं नहीं खा सकते। यही प्रकृति का नियम है और यही दार्शनिक सिद्धान्त है।

सामाजिक व्याधि के प्रतिकार का उपाय—शिक्षा, बलपूर्वक संस्कार-चेष्टा नहीं।

अतः हमें समझ लेना चाहिये कि इन सब बुराइयों का परिशोध बाहरी उपायों द्वारा नहीं, भीतरी उपायों द्वारा होगा। चाहे हम कितना ही क्यों न कहें इन बुराइयों को नाश करना प्रत्यक्ष काम नहीं है, वे शिक्षा द्वारा ही अप्रत्यक्ष रूप से नष्ट की जा सकती हैं। समाज से बुराई हटाने के समय सब से पहले इस बात को समझना होगा और इस बात को समझ कर अपने मन को शान्त करना होगा और अपने खून से जोश को हटा देना होगा। संसार का इतिहास हमें यह बात बताता है कि जहाँ कहीं इस प्रकार की उत्तेजना से समाज का सुधार हुआ है वहाँ केवल यही फल हुआ कि जिस उद्देश्य से वह किया गया, उसने उस उद्देश्य को ही विफल कर दिया। दासत्व नष्ट करने वाली अमेरिका की लड़ाई की अपेक्षा, अधिकार और स्वतंत्रता की स्थापना के लिए किसी बड़े सामाजिक आन्दोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आप सभी लोग उसे जानते हैं। उसके क्या फल हुये? आजकल के दास इस युद्ध के पूर्व के दासों की अपेक्षा कई हजार गुना अधिक बुरी अवस्था में हैं। इस युद्ध के पूर्व वे निग्रो किसी की सम्पत्ति थे और सम्पत्ति होने के कारण उनकी रक्षा की जाती थी जिसमें वे नष्ट न होने पावें। आज

वे किसी की सम्पत्ति नहीं हैं, उनके जीवन का कुछ मूल्य ही नहीं है। मामूली बातों के लिए आज वे जीते जी जला दिये जाते हैं। वे गोली से मार डाले जाते हैं और उनके हत्यारों के लिए कोई क़ानून ही नहीं है, क्योंकि वे निग्रो हैं, मानों वे मनुष्य तो क्या पशु भी नहीं हैं! खराबियों को सहसा क़ानून अथवा प्रबल उत्तेजना में आकर हटाने का यह नतीजा है।

उत्तेजनाजन्य प्रत्येक आन्दोलन के विरुद्ध चाहे वह भलाई के लिए ही क्यों न किया गया हो, यह ऐतिहासिक प्रमाण है। मैंने इसे देखा है और मेरे अनुभव ने मुझे यह सिखा दिया है। अतः मैं सबका दोष ही देखने वाली इन संस्थाओं का सदस्य नहीं हो सकता। दोष दिखाने की क्या आवश्यकता है? सभी समाज में तो दोष हैं। यह बात तो सभी जानते हैं। आजकल का बच्चा इसे जानता है। वह सभामञ्च पर खड़ा होकर हमारे सामने हिन्दू धर्म की भयानक बुराइयों का लम्बा लम्बा वर्णन कर सकता है। प्रत्येक आशिक्षित विदेशी जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता हुआ भारतवर्ष में पहुँचता है वह रेल पर दौड़ता हुआ भारतवर्ष की अवस्था का बहुत ही मामूली ज्ञान प्राप्त कर यहाँ की भयानक बुराइयों तथा अनिष्ट प्रथाओं का बड़ी विद्वत्तापूर्वक वर्णन करता है।

दोष दिखाने वाले अनेक हैं, प्रतिकार करने वाला कहाँ है!

हम भी मानते हैं कि यहाँ बुराइयाँ हैं। बुराई तो सभी आदमी बता सकते हैं पर मनुष्य समाज का सच्चा हितैषी वह है जो इन बुराइयों

से छूटने का उपाय बताता है। यह तो डूबते हुये लड़के और दार्शनिक की कथा होगी। जब दार्शनिक गम्भीर भाव से उसे उपदेश दे रहा था उसने कहा, "पहले मुझे पानी से बाहर निकालिये फिर उपदेश दीजिये।" इसी भाँति भारतवासी भी कहते हैं कि हम लोगों ने बहुत व्याख्यान सुन लिये, बहुत सी संस्थायें देख लीं, बहुत से पत्र पढ़ लिये, हमें बताइये वह मनुष्य कहाँ है जो अपने हाथ का सहारा देकर हमें इन दुःखों के बाहर निकालेगा? वह मनुष्य कहाँ है, जो हमसे वास्तविक प्रेम करता है? वह मनुष्य कहाँ है जो हमसे वास्तविक सहानुभूति रखता है। बस उसी आदमी की हमें जरूरत है। इन्हीं बातों में मेरा इन समाज-सुधारक आन्दोलनों से सर्वथा मतभेद है। सौ वर्षों से ये आन्दोलन चल रहे हैं, पर सिवाय निन्दा और विद्वेषपूर्ण साहित्य की रचना के अतिरिक्त इनसे क्या लाभ हुआ है? यदि ईश्वर की इच्छा से ये यहाँ न होते तो बड़ा ही उपकार होता; इन्होंने पुराने समाज की कठोर समालोचना, तीव्र दोषारोपण और निन्दा की है, इसका फल यह हुआ कि पुराने समाज ने भी अपना स्वर इनके स्वर में मिला दिया। और उन अपवादों का उन्हें अच्छा उत्तर दिया। इसके फल स्वरूप प्रत्येक भारतीय भाषा में भी ऐसे साहित्य की रचना हो गई जो प्रत्येक देश और जाति के लिए कलंक स्वरूप है। क्या यही सुधार है? क्या यही जाति को गौरवशाली बनायेगा? यह किसका दोष है

इसके बाद एक और भी महत्वपूर्ण विषय विचारणीय है। भारतवर्ष में हमारा शासन सदा ही राजाओं के द्वारा हुआ है, राजाओं ने ही हमारे सब क़ानून बनाये हैं। अब वे राजा नहीं हैं और कोई इस विषय

में अग्रसर होने के लिए मार्ग दिखानेवाला भी नहीं बचा है। गवर्नमेन्ट साहस नहीं कर सकती। गवर्नमेन्ट सर्वसाधारण के विचारों की गति देखकर ही अपनी कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। अपनी समस्याओं को हल कर लेने वाली, कल्याणकर, प्रबल सर्वसाधारण की सम्मति स्थिर करने में समय लगेगा और खूब अधिक समय लगेगा और इस बीच में हमें उसकी प्रतीक्षा करनी होगी। अतः सामाजिक सुधार की सम्पूर्ण समस्या इस भाँति उपस्थित होती है,—वे लोग कहाँ हैं जो सुधार चाहते हैं? पहले उनको प्रस्तुत करो। संस्कार चाहने वाले लोग कहाँ हैं? कुछ थोड़े से मुट्ठी भर लोगों को कोई विषय बुरा सा प्रतीत होता है, परन्तु अधिकांश व्यक्तियों को अभी तक वह वैसा नहीं जँचता। अब ये अल्प-संख्य व्यक्ति बाकी सब लोगों पर अपने मतानुसार संस्कार जबरदस्ती लादना चाहें तो वह घोर अत्याचार होगा। थोड़े लोग जो विचार करते हैं कि कुछ चीजें बुरी हैं, वह समग्र जाति के हृदय को स्पर्श नहीं करता। समग्र जाति अग्रसर क्यों नहीं होती? पहले समग्र जाति को शिक्षित करो, अपनी व्यवस्थापिका संस्थायें बनाओ तो नियम स्वयं ही आ जायेंगे। पहले उस शक्ति को उत्पन्न करो, जिससे नियम उत्पन्न होंगे। अब राजा नहीं है। नई शक्ति जिससे नई व्यवस्थायें होंगी वह लोक-शक्ति कहाँ है? पहले उसी लोक-शक्ति को संगठित करो। अस्तु, समाज-संस्कार के लिए भी लोगों को शिक्षित करना प्रथम कर्तव्य है। जब तक वह शिक्षा पूर्ण न हो तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

आज हमारा व्यवस्थाप्रणेता स्वधर्मावलम्बी राजा नहीं है, अब लोक-शक्ति का संगठन आवश्यक है।

गत शताब्दी में जिन सब संस्कारों के लिए आन्दोलन हुआ, वे केवल ऊपरी दिखावा मात्र थे। इन संस्कारों में प्रत्येक प्रथम दो वर्णों से ही सम्बन्ध रखता है, दूसरों से नहीं। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रति सैकड़ा भारतीय रमणियों का कोई सम्बन्ध नहीं है और इन सब आन्दोलनों का सम्बन्ध भारत के उच्च वर्णों से ही है, जो जनसाधारण को वञ्चित कर स्वयं शिक्षित हुए हैं। अपना घर साफ करने के लिए सभी प्रयत्न किये गये, पर यह संस्कार नहीं कहा जा सकता। संस्कार करने में हमें चीज़ के भीतर अर्थात् जड़ तक पहुँचना होगा। इसीको मैं आमूल संस्कार कहता हूँ। जड़ में अग्नि स्थापित करो और उसे क्रमशः ऊपर की ओर बढ़ने दो और एक अखण्ड भारतीय जाति सङ्गठित करने दो।

आमूल संस्कार।

यह समस्या बड़ी और विस्तृत है। अतः इसका हल होना भी उतना सरल नहीं है। गत कई शताब्दियों से यह समस्या हमारे महापुरुषों को ज्ञात थी, आजकल विशेषतः दक्षिण में बौद्ध धर्म और उसके अज्ञेय वाद की आलोचना करने की एक प्रथा सी चल पड़ी है। इसका उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता कि जो विशेष दोष आजकल हम लोगों में वर्तमान हैं वे बौद्ध धर्म के ही द्वारा हममें छोड़े गये हैं। जिन लोगों ने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति के इतिहास को कभी नहीं पढ़ा है, उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों में तुम लोगों ने पढ़ा है कि गौतम बुद्ध के द्वारा प्रचारित अपूर्व नीति और उनके लोकोत्तर चरित्र से ही बौद्ध धर्म का इतना विस्तार हुआ। भगवान बुद्धदेव के प्रति मेरी यथेष्ट श्रद्धा-भक्ति

बौद्ध धर्म।

२

है। पर मेरे शब्दों की ओर विशेष ध्यान दो। बौद्ध धर्म का विस्तार गौतम बुद्ध के मत या अपूर्व चरित्र के कारण नहीं हुआ, उसके विस्तार के कारण हैं बौद्धों के द्वारा निर्माण किये गये मन्दिर, प्रतिमायें और समग्र जाति के सम्मुख किये गये भड़कीले उत्सव आदि। इस भाँति बौद्ध धर्म ने उन्नति की। इन सब बड़े बड़े और भड़कीले उत्सवों और मन्दिरों के सामने घरों में हवन के लिए प्रतिष्ठित छोटी छोटी अग्नि-शालायें न ठहर सकीं। पर अन्त में इन सब की अवनति हुई। इन सबने वह घृणित भाव धारण किया जिसका वर्णन भी श्रोताओं के सामने नहीं किया जा सकता। जिन लोगों को इनके जानने की इच्छा हो वे दक्षिण भारत के नाना प्रकार की नक्काशियों से युक्त बड़े बड़े मन्दिरों में इन्हें देख सकते हैं।

शंकर, रामानुज आदि प्राचीन आचार्यों की संस्कार-चेष्टा तत्कालीन समाज को धीरे धीरे वेदान्त धर्म के अनुयायी करने की थी।

बौद्धों से हमने दाय स्वरूप केवल इन्हें ही पाया है। इसके बाद महान संस्कारक श्रीशंकराचार्य और उनके अनुयाइयों का अभ्युदय हुआ। उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षों में भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता को धीरे धीरे उस मौलिक विशुद्ध वेदान्त के धर्म की ओर लाने की चेष्टा की गई है। उन संस्कारकों को बुराइयों का पूरा ज्ञान था पर उन्होंने समाज की निन्दा नहीं की। उन्होंने नहीं कहा कि "जो कुछ तुम्हारे पास है वह सभी ग़लत है, उसे तुम फेंक दो।" ऐसा कभी नहीं हो सकता। आज मैंने पढ़ा कि मेरे मित्र डाक्टर बरोज कहते हैं, कि ईसाई धर्म के प्रभाव ने ३०० वर्षों में ग्रीक

और रोमन धर्म के प्रभाव को उलट दिया। जिसने कभी यूरोप, ग्रीस और रोम को देखा है वह कभी ऐसा नहीं कह सकता। रोमन और ग्रीक धर्मों का प्रभाव, प्रॉटेस्टेंट देशों तक में सर्वत्र वर्तमान है। केवल नाम बदल कर प्राचीन देवता नये वेश में वर्तमान हैं। उनका केवल नाम ही बदला गया है। देवियाँ तो 'मेरी' हो गई, देवता 'साधु' (Saints) हो गये और अनुष्ठानों ने नया-नया रूप धारण किया।

'पांटिफेक्स मैक्सेमस*' आदि प्राचीन उपाधियाँ पूर्ववत् ही वर्तमान हैं, इसलिए अचानक परिवर्तन नहीं हो सकते। भगवान शंकराचार्य और रामानुज भी इसे जानते थे। इसलिए उस समय प्रचलित धर्म को उन्नततम आदर्श के निकट पहुँचा देना ही उनके लिए एक उपाय शेष था। यदि वे दूसरी प्रणाली को प्रचलित करने की चेष्टा करते तो वे कपटी हो जाते, कारण कि उनके धर्म का प्रधान मत था क्रमशः विकास-वाद। उनके धर्म का यही मूलतत्व है कि इन सब नाना प्रकार की अवस्थाओं में से होकर आत्मा उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचती है। अतः ये सभी अवस्थायें आवश्यक और हमारी सहायक हैं। कौन इनकी निन्दा करने का साहस कर सकता है?

मूर्ति-पूजा को खराब बताने की प्रथा-सी चल पड़ी है और आज-कल सब लोग बिना किसी आपत्ति के उसमें विश्वास भी करने लग गये हैं। मैंने भी एक बार ऐसा ही विचारा और उसके दण्ड स्वरूप हमें एक ऐसे व्यक्ति के चरणकमलों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी जिसने

* रोम में पुरोहित-विद्यालय के प्रधानाध्यापक इसी नाम से पुकारे जाते हैं। इसका अर्थ है, प्रधान पुरोहित। अभी पोप इसी नाम से पुकारे जाते हैं।

मूर्ति-पूजा। सब कुछ मूर्ति-पूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था। मेरा अभिप्राय भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस से है। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा श्रीरामकृष्ण ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हो सकते हैं तब आप क्या चाहते हैं—संस्कारकों का धर्म या मूर्ति-पूजा? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा श्रीरामकृष्ण परमहंस उत्पन्न हो सकते हैं, तो और हजारों मूर्तियों की पूजा करो और ईश्वर तुम्हें इसमें सिद्धि दे। जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महात्मा पुरुषों की सृष्टि करो। फिर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा की जाती है। क्यों? यह कोई नहीं जानता। कारण कि हजारों वर्ष बीते किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी! अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सबकी मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा, "यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष भाव-प्रकाशक या किसी मूर्ति के द्वारा प्रकाशित किया जाय, तो यह भयानक दोष है, यही पाप है। परन्तु यदि वह एक सन्दूक के दो किनारों पर दो देवदूतों के बीच में बैठा हो और उसके ऊपर बादल हो, ऐसे भाव को प्रकाश करे, तो वह बहुत ही पवित्र होगा। यदि वह पेंडुकी का रूप धारण कर आये तो वह महापवित्र होगा; पर यदि वह गाय का रूप धारण कर आये तो यह मूर्ति-पूजकों का कुसंस्कार होगा! उसकी निन्दा करो।"

दुनिया का यही भाव है; इसीलिए कवि ने कहा है कि हम मर्त्य जीव कितने निर्बोध हैं। इसलिए परस्पर को परस्पर के दृष्टिकोण से देखना और विचार करना कितना कठिन है और यही मनुष्य समाज की उन्नति के लिए विघ्न स्वरूप है। यही ईर्ष्या, घृणा और झगड़ा-लड़ाई का

मूल है। लड़के और अकालपक्व शिशुगण जो कभी मद्रास के बाहर नहीं गये, वे हजारों प्राचीन संस्कारों से नियन्त्रित तीस करोड़ मनुष्यों को खड़े होकर नियम बताना चाहते हैं! क्या इसमें उन्हें लज्जा नहीं आती? इस प्रकार की निन्दा से विरत हो जाओ, पहले स्वयं शिक्षित बनो। श्रद्धाहीन बालकगण, तुम कागज पर कुछ पंक्तियाँ केवल घसीट सकते हो और उन्हें किसी मूर्ख के द्वारा प्रकाशित कराकर तुम समझते हो कि तुम जगत के शिक्षक हो और तुम्हारी ही राय भारत के सर्वसाधारण की राय है! क्या ऐसी बात नहीं है?

तुम दूसरों के दोष देख उन्हें शिक्षा देने जाते हो, स्वयं के दोष नहीं देखते।

मैं मद्रास के समाजसंस्कारकों से कहना चाहता हूँ कि मुझमें उनके प्रति खूब श्रद्धा और प्रेम है। उनके विशाल हृदय, उनकी स्वदेश-प्रीति, पीड़ितों और दरिद्रों के प्रति उनके प्रेम के कारण ही मैं उनसे प्रेम करता हूँ। मैं उनसे भ्रातृप्रेम के तौर पर कहूँगा कि उनकी कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। इस प्रणाली से भारतवर्ष में कई सौ वर्ष काम हुआ, पर वह सफल नहीं हो सका। अब हमें किसी नई प्रणाली से काम करना चाहिए।

संस्कारकों को नवीन प्रणाली का अवलम्बन करना होगा।

क्या भारतवर्ष में कभी संस्कारकों का अभाव था? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है? रामानुज, शंकर, नानक, चैतन्य, कबीर और दादू कौन थे? ये बड़े बड़े धर्माचार्यगण जो भारत-गगन में अति उज्ज्वल नक्षत्रों की भाँति एक के बाद एक उदय हुए और फिर अस्त हो गये, कौन थे? क्या रामानुज के हृदय में नीच जाति के लिए

प्रेम नहीं था ? क्या उन्होंने अपने सारे जीवन में चाण्डाल तक को अपने सम्प्रदाय में लेने का प्रयत्न नहीं किया ? क्या उन्होंने अपने सम्प्रदाय में मुसलमान तक को मिला लेने का प्रयत्न नहीं किया ? क्या नानक ने मुसलमान और हिन्दू दोनों से समान भाव से परामर्श कर समाज में नये भाव लाने की चेष्टा नहीं की ? इन सब लोगों ने प्रयत्न किया और उनका काम अभी भी जारी है। भेद केवल यही है कि वे आज कल के समाज-संस्कारकों की तरह दाम्भिक नहीं थे, वे अपने मुँह से कभी शाप का उच्चारण नहीं करते थे। उनके मुँह से केवल आशीर्वाद ही निकलते थे। उन्होंने कभी समाज के ऊपर दोषारोपण नहीं किया। उन्होंने लोगों से कहा कि जाति को धीरे धीरे उन्नत करना होगा। उन्होंने अतीत की ओर दृष्टि फेरकर कहा कि "हिन्दुओ, तुमने अभी तक जो किया अच्छा ही किया, पर भ्रातृगण, तुम्हें इससे भी अच्छा करना होगा।" उन्होंने यह नहीं कहा कि "पहले तुम दुष्ट थे और अब तुम्हें अच्छा होना होगा।" उन्होंने यही कहा कि "पहले तुम अच्छे थे, अब और भी अच्छे बनो।" इन दोनों बातों में बड़ा भेद है। हम लोगों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। वैदेशिक संस्थाओं ने बलपूर्वक जिस प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है उसके अनुसार काम करना वृथा है, वह असम्भव है। ईश्वर को धन्यवाद है कि हम लोग तोड़ मरोड़ कर दूसरी जाति में परिणत नहीं किये जा सकते, यह असम्भव है। मैं दूसरी जातियों की सामाजिक प्रथा की निन्दा नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं, पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अमृत है हमारे लिए वही विष हो सकता

प्राचीन और आधुनिक संस्कारकों में प्रभेद।

है। पहले यही शिक्षा ग्रहण करनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान, अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचारों से उनकी वर्तमान सामाजिक प्रथा संगठित हुई है। उन लोगों से भिन्न प्रकार के परम्परागत संस्कारों से और हजारों वर्षों के कर्मों से हमें स्वभावतः अपने संस्कारों के अनुसार ही चलना पड़ेगा।

मेरी कार्य-प्रणाली-देशकालोपयोगी किंचित परिवर्तन कर प्राचीन आचार्यों की कार्य-प्रणाली का अनुसरण करना।

तो मुझे किस प्रणाली से काम करना होगा? मैं प्राचीन महान आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करना चाहता हूँ। मैंने उनकी कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया है और जिस प्रणाली से उन्होंने कार्य किया उसका ईश्वर की इच्छा से मैंने आविष्कार किया है। वे समाज के बड़े संगठनकर्ता थे। उन्होंने विशेष भाव से शक्ति, पवित्रता और जीवन-शक्ति का संचार किया। उन्होंने बहुत से अद्भुत कार्य किये। हमें भी अद्भुत कार्य करने हैं। इस समय अवस्था कुछ बदल गई है, इसलिए कार्यप्रणाली में बहुत थोड़ा ही परिवर्तन करना होगा और कुछ नहीं। मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक जाति का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वही उसके जीवन का केन्द्र है, वही उसके जीवन का प्रधान स्वर है, दूसरे स्वर उसी से मिलकर ऐक्यतान उत्पन्न करते हैं। किसी देश में—जैसे इङ्गलैण्ड में राजनैतिक अधिकार ही जीवन-शक्ति है। कला-कौशल की उन्नति करना किसी दूसरी जाति का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे ही और दूसरे देशों का भी समझिए, किन्तु भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही जातीय जीवन का केन्द्र स्वरूप है और वही जातीय-जीवन

रूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई जाति अपनी स्वाभाविक शक्ति का, जिसकी ओर कई शताब्दियों से उसकी गति हुई हो, परित्याग करना चाहती है और वह यदि अपनी चेष्टा में सफल होती है, तो उसकी मृत्यु हो जाती है। अतः यदि तुम धर्म को परित्याग करने की अपनी चेष्टा में सफल हो जाओ और राजनीति, समाज-नीति या और किसी दूसरी चीज़ को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाओगे, तो उसका फल यह होगा कि तुम एकबारगी नष्ट हो जाओगे। ऐसा न हो, इसलिए तुम्हें अपनी धार्मिक शक्ति के द्वारा ही सब काम करना चाहिए। अपने स्नायु-समूह को धर्म रूपी शक्ति से अनुप्राणित करो।

मैंने देखा है कि "सामाजिक जीवन पर उसका कैसा प्रभाव पड़ेगा" यह बिना दिखाये मैं अमेरिकानिवासियों में किसी धर्म का प्रचार नहीं कर सकता था। मैं इङ्गलैण्ड में भी धर्म का प्रचार बिना यह बताये कि "वेदान्त के द्वारा कौन कौन आश्चर्यजनक राजनैतिक परिवर्तन हो सकेंगे," नहीं कर सका। इसी भाँति भारतवर्ष में सामाजिक संस्कार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह दिखा दिया जाय कि उस नई प्रथा से आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन सी सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें दिखाना होगा कि हमारे जातीय जीवन की आकांक्षा—आध्यात्मिक उन्नति—में उसके द्वारा कितनी अधिक सफलता होगी।

विभिन्न जातियों के जातीय मूल उद्देश्य के अनुसार कार्य-प्रणाली में तारतम्य होता है।

प्रत्येक आदमी अपना अपना मार्ग चुन लेता है, उसी भाँति प्रत्येक जाति भी। हमने कई युग पहले अपना पथ निर्धारित कर लिया। अब

धर्म को हमारे जातीय जीवन का मेरुदण्ड निर्धारित करना क्या बुरा है ?

हमें उसीके अनुसार चलना होगा और हमें और हमारे निर्वाचित मार्ग को कोई बुरा भी नहीं कह सकता। क्या जड़ के बदले में चैतन्य और मनुष्य के बदले में ईश्वर की चिन्ता करना खराब रास्ता कहा जायगा ? परलोक में दृढ़ विश्वास, इस लोक के प्रति तीव्र वितृष्णा, प्रबल त्याग-शक्ति तथा ईश्वर और अविनाशी आत्मा में दृढ़ विश्वास तुम लोगों में है। क्या तुम इसे छोड़ सकते हो ? तुम इसे नहीं छोड़ सकते। तुम जड़वादी होकर और जड़वाद की चर्चा करके हमें समझाने की चेष्टा कर सकते हो, पर मैं जानता हूँ कि तुम क्या हो। यदि मैं तुम्हें समझाऊँ तो तुम फिर भी वैसे ही आस्तिक हो जाओगे, जैसे आस्तिक तुम पैदा हुए थे। क्या तुम अपना स्वभाव बदल सकते हो ?

प्रथम कार्य— भारत में धर्म-प्रचार।

अतः भारतवर्ष में किसी प्रकार की उन्नति की चेष्टा करने के लिए आवश्यकता है कि पहले धर्मप्रचार किया जाय। भारत को सामाजिक अथवा राजनैतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यकता है कि उसमें आध्यात्मिक विचार भर दिए जायँ। पहला काम जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए वह यह है कि हमारे उपनिषदों, हमारे पुराणों और हमारे दूसरे शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपा है उसे इन सब ग्रन्थों से और मठ-समूह से बाहर निकालकर, जङ्गलों से बाहर निकालकर, सम्प्रदाय-विशेष के मनुष्यों के अधिकार से बाहर निकालकर समस्त भारतवर्ष में एक-बारगी फैलाना होगा, जिसमें इन सब शास्त्रों में छिपा सत्य अग्नि की

भाँति देश भर में उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, हिमालय से कन्या-कुमारी, और सिंधु से ब्रह्मपुत्रा तक फैल जाय। प्रत्येक मनुष्य उन्हें जान ले, कारण कहा है कि पहले इसे सुनना होगा, फिर मनन करना होगा और उसके बाद निदिध्यासन। पहले लोगों को इस शास्त्र-वाक्य को सुनने दो और जो व्यक्ति अपने शास्त्र के उस महान सत्य को दूसरों को सुनाने में सहायता पहुँचाएगा, वह आज ऐसा कर्म करेगा जिसके बराबर दूसरा कोई कर्म हो ही नहीं सकता। महर्षि मनु ने कहा है—"इस कलियुग में मनुष्यों के लिए एक ही धर्म शेष है, आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओं से कोई फल नहीं होता। इस समय दान ही एक मात्र कर्म है। और दानों में धर्मदान, अर्थात आध्यात्मिक ज्ञानदान ही सर्व-श्रेष्ठ है।" दूसरा दान ह विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्न-दान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो, इस दरिद्र और अत्यन्त दरिद्र देश में लोक कितना दान करते हैं, उसका भी ध्यान करो। यहाँ का आतिथि-सत्कार इस प्रकार का है कि कोई आदमी बिना अपने पास कुछ लिए उत्तर से दक्षिण तक यात्रा कर सकता है, हर स्थान में उसका ऐसा सत्कार होगा मानों वह मित्र ही है। यदि यहाँ कहीं पर भी एक टुकड़ा रोटी का रहेगा तो कोई भिक्षुक बिना खाए नहीं मर सकता।

दानमेकं कलौ युगे।

इस दानशील देश में हमें पहले प्रकार के अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान-विस्तार के लिए साहस पूर्वक अग्रसर होना होगा। और यह ज्ञान-विस्तार भारतवर्ष की सीमा में ही आबद्ध नहीं रहना चाहिए, इसका विस्तार सम्पूर्ण जगत में करना होगा। अभी तक यही होता भी रहा है।

भारतेतर देशों में धर्मप्रचार।

मेरी समर-नीति

जो लोग कहते है कि भारत के विचार कभी भारत से बाहर नहीं गये और जो लोग कहते हैं कि मैं ही पहला संन्यासी हूँ, जो भारत के बाहर धर्मप्रचार करने गया वे अपनी जाति के इतिहास को नहीं जानते। यह काम कई बार हो चुका है। जिस समय संसार को इसकी आवश्यकता हुई, उसी समय निरन्तर बहने वाले आध्यात्मिक ज्ञान-स्रोत ने संसार को प्लावित कर दिया। राजनैतिक ज्ञान का विस्तार अनेक सैनिकों को लेकर और बड़े उच्च स्वर से लड़ाई का बाजा बजाकर किया जा सकता है। लौकिक ज्ञान या सामाजिक ज्ञान का विस्तार तलवार और बन्दूक की सहायता से हो सकता है; किन्तु ओस जिस तरह अश्रुत और अदृश्य भाव से गिरने पर भी गुलाब की कलियों के समूह को खिला देती है, उसी तरह आध्यात्मिक ज्ञान भी शान्ति से ही दिया जा सकता है। भारतवर्ष ने बार बार इस आध्यात्मिक ज्ञान के उपहार को जगत को दिया है। जिस समय कोई प्रबल दिग्विजयी जाति उठ-कर संसार की विभिन्न जातियों को एकता के सूत्र में बाँधती है, रास्ता बना देती है, जिसमें एक स्थान की चीजें सुगमता से दूसरे स्थान पर भेजी जा सकें, उसी समय भारत ने समग्र संसार की उन्नति में जो अपना अंश उसे देना था अर्थात् धार्मिक ज्ञान उसे दे दिया। बुद्धदेव के जन्म लेने के बहुत पहले ही यह हुआ था। चीन, एशिया माइनर और मलाया द्वीपसमूह में इस समय भी उसके चिन्ह मौजूद हैं। जिस समय उस प्रबल दिग्विजयी ग्रीक ने उस समय ज्ञात संसार के सब अंशों को एकत्र किया था, उस समय भारत के आध्यात्मिक ज्ञान ने बाहर निकलकर संसार को प्लावित कर दिया था। पाश्चात्य देशवासी जिस सभ्यता का इस समय गर्व करते हैं वह उसी बड़ी बाढ़ का अवशिष्ट

चिन्ह मात्र है। इस समय भी वह सुयोग उपस्थित हो गया है। इङ्गलैण्ड की शक्ति ने समस्त संसार की जातियों को एकता के सूत्र में बाँध दिया है जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इङ्गलैण्ड के मार्ग और आने-जाने के दूसरे रास्ते संसार के एक स्थान से लेकर दूसरे स्थान तक फैले हुए हैं। आज अङ्गरेजों की प्रतिभा के कारण संसार अपूर्व भाव से एकता के सूत्र में ग्रथित हुआ है। इस समय संसार के भिन्न-भिन्न स्थानों में जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं, वैसे मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुए थे। इस सुयोग में भारतवर्ष ज्ञात अथवा अज्ञात भाव से उठकर अपने आध्यात्मिक ज्ञान का दान जगत को दे रहा है। और वह उक्त सब मार्गों का अवलम्बन कर समस्त संसार में फैल जायगा। मैं जो अमेरिका गया, वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नहीं हुआ, किन्तु भारत के भगवान की इच्छा ने, जो उसके भाग्य को नियंत्रित कर रही है, मुझे अमेरिका भेजा और वही फिर इसी भाँति हजारों आदमियों को संसार की सभी जातियों के निकट भेजेगी। संसार की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। यह भी करना होगा। तुमको भी भारतवर्ष के बाहर धर्मप्रचार करने के लिए जाना होगा। इसका प्रचार जगत की सब जातियों और मनुष्यों में करना होगा। पहले यही धर्मप्रचार आवश्यक है।

साथ ही साथ विद्यादान।

धर्मप्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्यान्य विद्यायें आयेंगी जिनकी तुम लोगों को आवश्यकता है, पर यदि तुम लौकिक विद्या, बिना धर्म के ग्रहण करना चाहो तो, मैं तुमसे साफ

साफ कहूँगा कि भारतवर्ष में ऐसा करने का तुम्हारा प्रयत्न व्यर्थ होगा, लोगों के हृदयों में यह प्रयत्न स्थान ग्रहण न कर सकेगा। अंशतः इसी कारण से बौद्ध धर्म का इतना बड़ा आन्दोलन अपना प्रभाव यहाँ स्थापित न कर पाया।

आचार्य शिक्षालय।

इसलिए, मेरे मित्रो, मेरा विचार है कि मैं भारतवर्ष में कितने ही ऐसे शिक्षालय स्थापित करूँ जहाँ हमारे नवयुवक अपने शास्त्रों के ज्ञान में शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सकें। केवल मनुष्यों की आवश्यकता है और सब कुछ हो जाएगा, किन्तु आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और अन्त तक कपटरहित नवयुवकों की। इस प्रकार के सौ नवयुवकों से संसार के सभी भाव बदल दिए जा सकते हैं। और सब चीज़ों की अपेक्षा इच्छाशक्ति का अधिक प्रभाव है। इच्छाशक्ति के सामने और सब शक्तियाँ दब जायँगी, क्योंकि इच्छाशक्ति साक्षात् ईश्वर से निकल कर आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके निकट अपने धर्म के महान सत्यसमूह का प्रचार करो, संसार इसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

आत्मतत्व सुनने से हीन व्यक्तियों में शक्ति का विकास होगा।

हजारों वर्षों से लोगों को मनुष्यों की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। संसार भर में सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। कई शताब्दियों से

वे ऐसे डराये गए हैं कि वे सचमुच ही करीब करीब पशुत्व को प्राप्त हो गए हैं। उन्हें कभी आत्मतत्त्व सुनने का मौका नहीं दिया गया। उनको इस समय आत्मतत्त्व सुनने दो, वे लोग पहचान लें कि छोटे से छोटे मनुष्य में भी आत्मा मौजूद है, जो न कभी मरती है और न पैदा ही होती है, जिसको न तलवार काट सकती है, न आग जला सकती है, न हवा सुखा सकती है और न जिसकी मृत्यु ही होती है, जो आदि और अन्त के परे है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

उन्हें अपने में विश्वास करने दो, अंग्रेजों और तुममें किस लिए इतना अन्तर है ? उनको अपने धर्म, अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध में जो वे कहें कहने दो, मुझे मालूम है कि दोनों जातियों में किस चीज़ में अन्तर है। अन्तर केवल यही है कि अंग्रेज अपने ऊपर विश्वास करते हैं और तुम लोग नहीं। जब वह यह विश्वास करता है कि मैं अंग्रेज हूँ उस समय वह जो चाहता है, वहीं कर डालता है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ब्रह्म जाग उठता है। वह उस समय जो भी इच्छा करता है वही कर लेता है। तुम लोगों को बताया गया है और शिक्षा दी गयी है कि तुम कुछ भी नहीं हो, और तुम कुछ नहीं कर सकते, इस भाँति तुम प्रति दिन अकर्मण्य होते जाते हो। इसलिए हमें बल की आवश्यकता है और अपने में विश्वास की।

आत्म-विश्वास।

हम लोग दुर्बल हो गए हैं, इसीलिए गुप्त विद्या और रहस्य-विद्या धीरे धीरे हम में घुस आई हैं। चाहे उनमें अनेक सत्य क्यों न हों पर

दुर्बलता और गुप्त-विद्या (Occultism)

उन्होंने हमें नष्ट कर दिया है। अपने स्नायु को बलवान बनाओ। हमें लोह के पुट्ठों और फौलाद के स्नायु की आवश्यकता है। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं है। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और मनुष्य बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें मनुष्य बनानेवाली शिक्षा को सर्वत्र फैलाने की आवश्यकता है। सत्य की परीक्षा करने का यह उपाय है—जिससे तुममें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक निर्बलता आवे उसे जहर की भाँति छोड़ दो, उसमें जीवन-शक्ति ही नहीं है, अतः वह सत्य नहीं हो सकता; सत्य बलप्रद है, सत्य पवित्रता है, सत्य ज्ञान देनेवाला है। सत्य को अवश्य ही बलप्रद होना चाहिए, जो हृदय के अन्धकार को दूरकर उसमें तेज का प्रकाश कर दे। यद्यपि इन रहस्य-विद्याओं में कुछ सत्य है, तो भी ये साधारणतया मनुष्य को निर्बल ही बनाती हैं। मेरा विश्वास करो, मैंने अपने जीवनभर में अनुभव किया है और इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वे निर्बल करनेवाली हैं। मैं भारत के सभी स्थानों में घूम चुका हूँ, सभी गुफाओं का अन्वेषण कर चुका हूँ और हिमालय पर भी रह चुका हूँ। मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ जो अपने जीवन भर वहीं रहे हैं। मैं अपनी जाति से प्रेम करता हूँ; तुमको हीनतर और वर्तमान अवस्था से दुर्बलतर नहीं देख सकता। अतः तुम्हारे लिए और सत्य के लिए हमें चिल्लाना होगा, "बस ठहरो"। अपनी जाति की हीनतर अवस्था के विरुद्ध हमें अपनी आवाज़ उठानी होगी। निर्बल करनेवाली इन रहस्य-विद्याओं को छोड़ दो और बलवान बन जाओ। तुम्हारे उपनिषद् आलोकप्रद, बलप्रद, दिव्य दर्शनशास्त्र हैं,

उन्हीं का आश्रय ग्रहण करो, और इन सब रहस्यमय दुर्बलताजनक विषयों को दूर करो। उपनिषद् रूप महान दर्शन का अवलम्बन करो, जगत के सब से बड़े सत्य बड़ी सरलता से समझे जा सकते हैं, उतनी ही सरलता से जितनी सरलता से तुम्हारा अस्तित्व। उपनिषद् के सत्य तुम्हारे सामने हैं। इनका अवलम्बन करो, इनके उपदेशों को कार्य में परिणत करो तो अवश्य ही भारत का उद्धार हो जायगा।

बलप्रद उपनिषदों का अवलम्बन करो।

एक बात और कहकर मैं समाप्त करूँगा। लोग स्वदेश-भक्ति की चर्चा करते हैं। मैं स्वदेश-भक्ति में विश्वास करता हूँ, पर स्वदेशभक्ति के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचार-शक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हम को थोड़ी दूर अग्रसर कर देती है और वहीं ठहर जाती है; किन्तु हृदय के द्वारा ही महाशक्ति की प्रेरणा होती है। प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। जगत के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अतः मेरे भावी संस्कारको, मेरे भावी देशभक्तो, तुम हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय में समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तान पशुतुल्य हो गई हैं? क्या तुम हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भाँति भूखों मरते आ रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है? क्या तुम यह सब समझ कर कभी अस्थिर हुए हो? क्या तुम कभी इससे अनिद्रित हुए हो? क्या कभी यह भावना तुम्हारे रक्त में मिलकर तुम्हारी

स्वदेशहितैषी बनने के लिए आवश्यकता है हृदय, कर्मशीलता और दृढ़ता की।

धमनियों में बही है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिली है? क्या उसने कभी तुम्हें पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें दरिद्रता और नाश का ध्यान आया है? क्या तुम अपने नाम-यश, सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो? क्या तुम ऐसे हो गये हो? तब जानो कि तुमने स्वदेशभक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है। जैसा तुममें से अधिक लोग जानते हैं, मैं धार्मिक महासभा के लिए अमेरिका नहीं गया था, किन्तु देश के जन-साधारण की दुर्दशा के प्रतिकार करने का भूत मुझमें और मेरी आत्मा में घुस गया था। मैं अनेक वर्ष तक समग्र भारत में घूमता रहा, पर अपने स्वदेशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई अवसर ही नहीं मिला, इसीलिए मैं अमेरिका गया। तुममें से अधिकांश जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धार्मिक महासभा की कौन परवा करता था? यहाँ मेरे रक्तमांस स्वरूप जनसाधारण की दशा हीन होती जाती थी, उनकी कौन खबर ले? स्वदेशहितैषी होने की यह मेरी पहली सीढ़ी है।

माना कि तुम अनुभव करते हो; पर पूछता हूँ कि क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा को निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्यपथ निश्चित किया है? क्या लोगों को गाली न देकर उनकी सहायता का कोई ठीक उपाय सोचा है? क्या स्वदेशवासियों को उनकी जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए और उनके दुःखों को कम करने के लिए कुछ सान्त्वनादायक शब्दों को खोजा है? किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या पर्वताकार

मेरी समर-नीति

विघ्नबाधाओं को दबाकर कार्य करने की तुममें इच्छा है? यदि सम्पूर्ण जगत तलवार हाथ में लेकर तुम्हारे विपक्ष मे खड़ा हो तब भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे? यदि तुम्हारे स्त्री-पुत्र तुम्हारे प्रतिकूल हों, यदि तुम्हारा धन चला जाय, यदि तुम्हारा नाम भी नष्ट हो जाय, तब भी क्या तुम इसमें लगे रहोगे? फिर भी क्या तुम उसका पीछा करोगे और अपने लक्ष्य की ओर स्थिरता से बढ़ते ही जाओगे? जैसा कि राजा भर्तृहरि ने कहा है—"चाहे नीतिनिपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी रहे या जहाँ उसकी इच्छा हो चली जाय, आज ही मृत्यु हो या सौ वर्ष बाद, किन्तु धीर पुरुष न्याय के पथ से विचलित नहीं होते।"* क्या तुममें यह दृढ़ता है? यदि तुममें ये तीन चीज़ें हैं तो तुममें से प्रत्येक आदमी अलौकिक कार्य कर सकता है। तुमको समाचारपत्रों में लिखने की आवश्यकता नहीं, तुमको व्याख्यान देते हुए फिरने की आवश्यकता नहीं; स्वयं ही तुम्हारे मुख पर एक स्वर्गीय ज्योति विराजेगी। यदि तुम पर्वत की कन्दरा में रहो तब भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को तोड़कर बाहर निकलेंगे और सैकड़ों वर्ष तक समग्र संसार में भ्रमण करते रहेंगे यहाँ तक कि वे किसी न किसी के मस्तिष्क का आश्रय ले लेंगे

---

* निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

—नीतिशतक, १४

और वहीं अपना काम करने लगेंगे। चिन्ता, निष्कपटता तथा अच्छे विचारों की यह शक्ति है।

मुझे डर है कि तुम्हें देर हो रही है। पर एक बात और कहूँगा। ऐ मेरे स्वदेशवासियो, ऐ मेरे मित्रो, मेरे बच्चो, जातीय जीवन का

जातीय नौका।

यह जहाज़ करोड़ों आदमियों को जीवन रूपी समुद्र के पार करता रहा है। इसकी सहायता से कई शताब्दियों तक लाखों आत्माएँ जीवन-नदी के दूसरे किनारे पर अमृत-धाम में पहुँची हैं; पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से इसमें कुछ खराबी हो गयी है, इसमें एक दो छिद्र हो गये हैं, तो क्या म इसकी निन्दा करोगे? संसार की दूसरी सब चीज़ों की अपेक्षा जो चीज़ हमारे अधिक काम आई थी, क्या इस समय तुम उस पर दुर्वाक्य बरसाओगे। यदि हमारे जातीय जहाज़ में, हमारे समाज में छिद्र हो गया है, तो हम उसकी सन्तान हैं, आओ चलें, हम उसे बन्द कर दें। हमें अपने हृदय के खून को भी आनन्द पूर्वक देकर उसे बन्द कर देना चाहिए। यदि हम ऐसा न कर सके तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपने मस्तिष्क रूपी काठ के टुकड़े से उसे बन्द करेंगे; पर कभी उसकी निन्दा न करेंगे। कभी भी इस समाज के विरुद्ध एक भी कड़े शब्द का प्रयोग मत करो। मैं उससे उसके प्राचीन महत्व के लिए प्रेम करता हूँ। मैं तुम सब लोगों से प्रेम करता हूँ, कारण कि तुम देवताओं की सन्तान हो, प्रतिष्ठित पूर्वपुरुषों के वंशज हो। तब मैं कैसे तुम्हारी निन्दा कर सकता हूँ। तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो। ऐ मेरे बच्चो, मैं तुम्हारे पास अपने सब उद्देश्य बताने के लिए आय

हूँ। यदि तुम मेरी बात सुनो तो मैं तुम्हारे साथ कार्य करने को प्रस्तुत हूँ। यदि तुम उन्हें न सुनो और मुझे अपने पैरों की ठोकरें मार-कर भारतभूमि के बाहर निकाल दो, फिर भी मैं तुम लोगों के पास आकर कहूँगा कि हम सबलोग डूब रहे हैं। मैं तुम लोगों के साथ मिलने के लिए आया हूँ और यदि डूबना है तो हम सब लोगों को साथ ही डूबने दो, किन्तु किसी के लिए हमारे मुँह से खराब शब्द न निकलें।

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

१-३. **श्रीरामकृष्णवचनामृत**–तीन भागों में-अनु० पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; प्रथम भाग (द्वितीय संस्करण), मूल्य ६); द्वितीय भाग-मूल्य ६); तृतीय भाग–मूल्य ७॥)

४-५. **श्रीरामकृष्णलीलामृत**–(विस्तृत जीवनी)–(द्वितीय संस्करण)- दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य ... ... ५)

६. **विवेकानन्द-चरित**–(विस्तृत जीवनी)–सत्येन्द्रनाथ मजूमदार; मूल्य ६)

७. **विवेकानन्दजी के संग में**-(वार्तालाप)-शिष्य शरच्चन्द्र; मूल्य ५।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

८. **धर्मविज्ञान**	(प्रथम संस्करण)	१॥=)
९. **कर्मयोग**	(प्रथम संस्करण)	१॥=)
१०. **हिन्दू धर्म**	(प्रथम संस्करण)	१॥)
११. **प्रेमयोग**	(द्वितीय संस्करण)	१।=)
१२. **भक्तियोग**	(द्वितीय संस्करण)	१।=)
१३. **आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग**	(द्वितीय संस्करण)	१।)
१४. **परिव्राजक**	(तृतीय संस्करण)	१।)
१५. **प्राच्य और पाश्चात्य**	(तृतीय संस्करण)	१।)
१६. **शिकागो वक्तृता**	(चतुर्थ संस्करण)	॥=)
१७. **मेरे गुरुदेव**	(तृतीय संस्करण)	॥=)
१८. **हिन्दू धर्म के पक्ष में**	(प्रथम संस्करण)	॥=)
१९. **वर्तमान भारत**	(द्वितीय संस्करण)	॥)
२०. **पवहारी बाबा**	(प्रथम संस्करण)	॥)
२१. **मेरा जीवन तथा ध्येय**	(प्रथम संस्करण)	॥)
२२. **मरणोत्तर जीवन**	(प्रथम संस्करण)	॥)

२३. **भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ**–स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शारदानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द; मूल्य ॥=)

मराठी विभाग

१-२. **श्रीरामकृष्ण चरित्र**–दो भागों में–प्रत्येक भाग का मूल्य २॥।)
३. **श्रीरामकृष्णवाक्सुधा** (द्वितीय संस्करण) ॥।=)
४. **श्रीरामकृष्ण परमहंस देव यांचें सांक्षिप्त चरित्र** =)॥
५. **शिकागो-व्याख्यानें** (द्वितीय संस्करण)–स्वामी विवेकानन्द ॥=)
६. **माझे गुरुदेव**–स्वामी विवेकानन्द ।)
७. **साधु नाग महाशय चरित्र** ॥।)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर, सी. पी.

मिश्रित

तन्नो हंसः प्रचोदयात्

মূল্য ৩ আ.